

पाठ्यचर्या को शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने की योजना के रूप में देखा जाता है। हर एक पाठ्यचर्या में कुछ मान्यताएं निहित होती हैं। ये बुनियादी मान्यताएं समाज, सीखना, बच्चे के संदर्भ और ज्ञान आदि के बारे में होती हैं। यह लेख भारत में अभी तक बने तीन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेजों का ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से विवेचना करता है। पहले दो दस्तावेजों की बनिस्बत 2005 का दस्तावेज ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से काफी आगे है लेकिन इसमें भी सीखने के सिद्धांत और ज्ञानमीमांसा के बीच एक तनाव नजर आता है।

ज्ञान की संगत धारणा की तलाश

रोहित धनकर

परिचय

जाने-माने शिक्षाविद्, दिगन्तर के मानद सचिव। आजकल अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बेंगलूर में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर।

पिछले लगभग तीन दशकों में कई अध्ययनों ने इस ओर संकेत किया है कि शिक्षकों की ज्ञान संबंधी धारणाओं और शिक्षार्थी के अधिगम यानी सीखने के बीच आपसी संबंध है (शुल्मेन(1986); मेड्वेल आदि (1998); एस्क्यू आदि (1997))। शिक्षण की गतिविधि पर दार्शनिक नजरिए से छपे साहित्य में इस बात पर पहले भी बल दिया गया है कि जो पढ़ाया जा रहा है, उसे शिक्षक समझ पाए। यह बात खासतौर से लोकतांत्रिक समाजों और सोचने-विचारने में आजादी के विकास से संबद्ध सामग्री के बारे में कही जा रही है। मसलन, शेफ़लर (1967) अपने निबंध 'फिलॉसॉफिकल मॉडल्स ऑफ टीचिंग' में शिक्षण के 'रूल मॉडल' के हक में दलील देते हैं। तार्किक सोच का विकास ज्ञान की परंपराओं में बद्धमूल है, ऐसा यह मॉडल मानता है। एक और उदाहरण लें तो हर्स्ट (1967) सवाल खड़ा करते हैं कि 'हम एक विषय को पढ़ाने में किस उद्देश्य को पाना चाहते हैं? उसके सीखने में क्या कुछ शामिल है?' यदि हम चाहते हैं कि शिक्षार्थी समझ पाएं और हम 'समझना' शब्द का सही अर्थ भी निकाल पाएं, तो हमें तार्किक तथ्यान्वेषण की परंपराओं और ढांचों की शरण में जाना होगा। इन विचारों से संकेत मिलता है कि ज्ञान के बारे में (शिक्षकों समेत) शिक्षा प्रदान करने वालों का दृष्टिकोण शिक्षण की प्रक्रिया तथा शिक्षार्थी के सीखने, दोनों को प्रभावित करता है।

पाठ्यचर्या दस्तावेज किसी समाज में शिक्षार्थियों के शिक्षण हेतु

ज्ञान के आधिकारिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या या राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में प्रस्तुत ज्ञान के प्रति आधिकारिक दृष्टिकोण राष्ट्र की संपूर्ण शैक्षिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। इससे लाखों (भारत के संदर्भ में करोड़ों) बच्चों का बौद्धिक विकास और सीखना भी प्रभावित होता है। इसलिए एक देश की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के ढांचे को मार्गदर्शित करने वाला ज्ञान का विचार बहुत महत्त्व का मुद्दा है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह पर्चा उन ज्ञानशास्त्रीय ढांचों को समझने का एक प्रयास है जिन्हें भारत की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखाएं अख्तियार करने की कोशिश करती हैं।

इस पर्चे में चुने गए काम को पूरा करने के लिए पहले तो विश्लेषण का एक ढांचा अख्तियार किया जाएगा। फिर उसका प्रयोग करते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखाओं द्वारा स्वीकार किए गए मूल्यों, उद्देश्यों और ज्ञान की धारणाओं की समालोचना की जाएगी। लेकिन बल ढांचे के ज्ञानशास्त्रीय हिस्से पर ही दिया जाएगा।

विश्लेषण के लिए एक रूपरेखा

पाठ्यचर्या को अलग-अलग तरह से परिभाषित किया जाता है। पाठ्यचर्या की सामाजिक-राजनैतिक समीक्षा से मिले प्रोत्साहन के चलते 'निर्धारित पाठ्यचर्या', 'अपेक्षित पाठ्यचर्या', 'कार्यान्वित पाठ्यचर्या', 'परोक्ष पाठ्यचर्या' आदि जैसी धारणाएं सूत्रबद्ध हुई हैं। ये बहस-मुबाहिसे लाभदायक हैं। इसी के चलते सिद्धांत तथा व्यवहार के बीच के अन्तर, उनके बीच की दरार से संबद्ध महत्त्वपूर्ण मसले खुलकर सामने आते हैं। शैक्षिक प्रक्रिया के अनपेक्षित नतीजे भी सामने आते हैं, जिनके गंभीर सामाजिक सरोकार हो सकते हैं। लेकिन एक बात को ध्यान में रखना जरूरी है - जब समाज और देश पाठ्यचर्या विकसित करते हैं तो जैसा विंच (1996) का कहना है, उन्हें मूलतः इस अर्थ में तैयार किया जाता है कि "स्कूलों में क्या कुछ किया जाना चाहिए न कि उनमें वास्तव में क्या है, हालांकि आदर्श रूप में तो दोनों एक हो जाएंगे"। इस पर्चे में पाठ्यचर्या को "शिक्षा के उद्देश्य पूरा करने वाले ज्ञान, समझ और दक्षता की निर्धारित विषयवस्तु" माना गया है (वही)। लेकिन ध्यान देना होगा कि ज्ञान और समझ में नैतिक समझ भी शामिल है और इसलिए मूल्य भी। बहुत संभव है कि शिक्षा पद्धति और मूल्यांकन के लिए पाठ्यचर्या के अंतर्गत विषयवस्तु-चयन के निहितार्थ होंगे। हम किसी भी पाठ्यचर्या के आंतरिक ढांचे को देखें तो पाएंगे कि उसके कुछ लक्ष्य होंगे, उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विषयवस्तु होगी; कक्षा में आदान-प्रदान के लिए इस्तेमाल होने वाली सामग्री तथा शिक्षा पद्धति के लिए और चुने गए लक्ष्यों की उपलब्धि हेतु हुई प्रगति के मूल्यांकन के लिए सिफारिशें होंगी। पाठ्यचर्या का यह ढांचा इस पर्चे में विश्लेषित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के तीनों दस्तावेजों में दिखाई देता है। यह 2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा पर पुनर्विचार के दौरान विकसित पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों पर पोजिशन पेपर (एन.सी.ई.आर.टी. 2006) में भी अभिव्यक्त होता है।

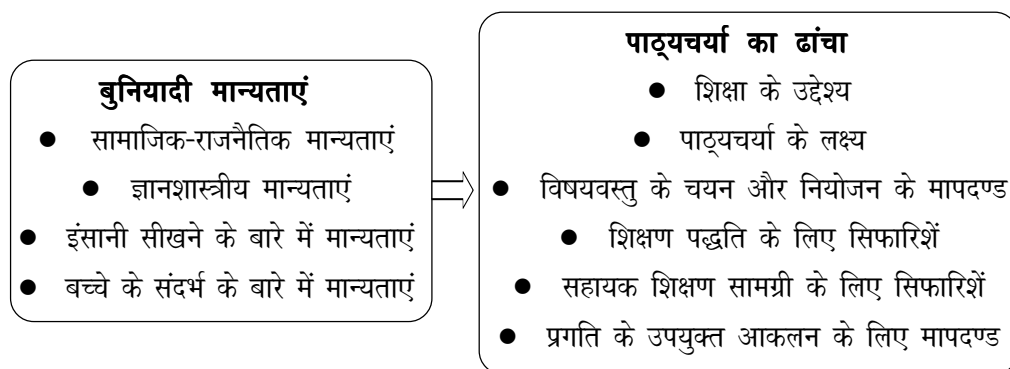
पाठ्यचर्या रूपरेखा को जिस प्रकार भारत में लिया जाता है, उस समझ के तहत जरूरी नहीं है कि उसमें विषयवस्तु की बारीकियों के बारे में, उस विषयवस्तु को पढ़ाए जाने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले तरीकों और गतिविधियों के बारे में, कुछ बताया जाए। इस बारे में भी कुछ कहना जरूरी नहीं है कि क्या पुस्तकें हों और मूल्यांकन के तौर-तरीके-प्रक्रियाएं क्या हों। लेकिन पाठ्यचर्या की रूपरेखा से यह आशा जरूर की जाती है कि पाठ्यचर्या के इन सब हिस्सों के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश उसमें हों, जिनके आधार पर उन हिस्सों की तफसील में जाया जा सके। इस प्रकार पाठ्यचर्या की रूपरेखा पाठ्यक्रम विकसित करने के तौर-तरीके प्रदान करती है। वह उसके औचित्य के लिए आधार भी देती है। लेकिन पाठ्यचर्या की रूपरेखा में अभिव्यक्त दिशानिर्देशों और सिद्धांतों की प्रकृति ऐसी है कि उनका भी औचित्य बताना जरूरी हो जाता है। उदाहरण के लिए, सब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखाएं 'बाल-केन्द्रित

शिक्षा पद्धति' की सिफारिश करती हैं जिसका औचित्य, सही बात कहें तो स्वयंसिद्ध नहीं है, हालांकि भारत के पाठ्यचर्या संबंधी दस्तावेज शायद इसे स्वयंसिद्ध ही मानते हैं। इसलिए, अर्थ की व्याख्या के बारे में और पाठ्यचर्या संबंधी सिफारिशों के लिए दिए गए औचित्यों के बारे में प्रश्न उठाए जाने की जरूरत है, उनसे संबोधित होने की और उनके उत्तर मिलने की भी जरूरत है। इस औचित्य में क्या शामिल हो सकता है? और यदि सिफारिश की गई किन्हीं बातों पर झगड़ा हो तो पाठ्यचर्या संबंधी इस प्रकार के दिशानिर्देशों और सिद्धांतों की आलोचना और उन पर बहस का आधार क्या होगा?

अपने निबंध "पाठ्यचर्या की रूपरेखा पर" में धनकर (2000) की दलील है कि पाठ्यचर्या संबंधी निर्णयों के लिए आगे का औचित्य कुछ सामान्य सिद्धांतों पर निर्भर करता है, जिन्हें पहले से मान लिया जाता है लेकिन बहसों में इनका जिक्र कम ही किया जाता है। धनकर की यह दलील भी है कि इन सामान्य सिद्धांतों को एक पर्याप्त हद तक अभिव्यक्त करना और उन्हें मोटे तौर पर चार समूहों में व्यवस्थित करना संभव है। इन समूहों में कुछ समानता भी हो सकती है लेकिन इसके बावजूद वे विश्लेषण और अर्थपूर्ण बहस के लिए लाभदायक उपकरण की तरह प्रयोग में लिए जा सकते हैं। सामान्य सिद्धांतों के ये चार समूह मानव और समाज, ज्ञानशास्त्र, सीखने के सिद्धांतों और बच्चों के संदर्भों से संबंध रखते हैं।

इस ढांचे के थोड़े से परिवर्तित रूप का प्रयोग सी.एस.टी.(एन.सी.ई.आर.टी., 2006) में किया गया है, जहां इन समूहों का जिक्र इस रूप में आता है "मानव एवं समाज से संबद्ध मान्यताएं", "ज्ञानशास्त्रीय मान्यताएं", "सीखने के बारे में मान्यताएं" तथा "बच्चे और उसके संदर्भ की कल्पित समझ"। यहां मैं इन्हें इस रूप में रखना चाहूंगा : सामाजिक-राजनैतिक मान्यताएं, ज्ञानशास्त्रीय मान्यताएं, इंसानी सीखने के बारे में मान्यताएं और बच्चे के संदर्भ के बारे में मान्यताएं। मेरे विचार से यह मामूली-सा बदलाव पहले की गई अभिव्यक्ति की भावना को तो बनाए ही रखता है, बात को अधिक पैनेपन के साथ केन्द्रित भी करता है।

इस ढांचे को इस प्रकार चित्रित किया जा सकता है :



पाठ्यचर्या की रूपरेखा को समझने के लिए हमें इन बातों की पड़ताल करनी होगी : बुनियादी मान्यताओं की उपयुक्तता और आंतरिक तार्किक संगति बुनियादी मान्यताओं की पाठ्यचर्या के घटकों (यानी उद्देश्य, लक्ष्य आदि) से संगति और पाठ्यचर्या के विभिन्न घटकों की पर्याप्तता तथा उनका एक-दूसरे की संगति में होना।

इस लेख का मूल आशय ज्ञानशास्त्रीय मान्यताओं की पड़ताल करना है और इसलिए मैं सामाजिक-राजनैतिक मान्यताओं और ज्ञानशास्त्रीय मान्यताओं के बीच संबंध पर ध्यान केन्द्रित करूंगा; साथ ही उद्देश्यों,

लक्ष्यों, विषयवस्तु के चयन और नियोजन तथा शिक्षण पद्धति के लिए सिफारिशों के साथ ज्ञानशास्त्रीय मान्यताओं के संबंध पर रोशनी डालूंगा। जाहिर है कि यह विश्लेषण संपूर्णता लिए हुए नहीं होगा लेकिन मेरे विचार में इस लेख के कथित उद्देश्यों के लिए काफी होगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के दस्तावेज

अब तक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ.) के तीन ही संस्करण रहे हैं। प्रथम का शीर्षक था “प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा” और इसका प्रकाशन 1988 में हुआ था (एन.सी.एफ. 1988)। इसे सन् 2000 में संशोधित किया गया और संशोधित दस्तावेज को शीर्षक दिया गया “स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा” (एन.सी.एफ. 2000)। सन् 2005 में इसकी फिर से समीक्षा की गई और संशोधन किया गया। नए दस्तावेज को “राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005” (एन.सी.एफ. 2005) कहा गया। यह आखरी दस्तावेज ही भारत में प्रचलित मौजूदा पाठ्यचर्या रूपरेखा है और इसलिए यहां इसी पर अधिकतर ध्यान केन्द्रित रहेगा।

पाठ्यचर्या रूपरेखाओं में मूल्य

एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 में मूल्यों पर चर्चा विस्तृत, जटिल और कुछ अस्पष्ट तथा अव्यवस्थित-सी है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सब दस्तावेज, विशेष तौर पर पहले दो, विभिन्न चिन्ताओं और सिफारिशों को अभिव्यक्त करने के लिए मूल्यों को बीच में लाते हैं। यह सही भी है। लेकिन ऐसा करते हुए प्रयोग में लाई गई शब्दावली को प्रायः स्पष्ट तौर पर परिभाषित नहीं किया गया और न ही उसका कोई औचित्य दिया गया है। तीनों दस्तावेज शुरुआत के अध्यायों में संदर्भ और परिप्रेक्ष्य को स्थापित करते हैं और बहुत बार यहां मूल्यों का जिक्र किया गया है हालांकि यह जिक्र बाद के अध्यायों में उद्देश्यों, विषयवस्तु तथा शिक्षण पद्धति को अभिव्यक्त करते हुए भी लगातार किया गया है।

इन सब पाठ्यचर्या रूपरेखाओं में सवैधानिक मूल्यों का जिक्र सबसे अधिक खुले तौर पर किया गया है। एक राजनैतिक-पहचानयुक्त राष्ट्र के रूप में भारत के विचार ने 1857 से शुरू हुए और 1947 में अपने निष्कर्ष पर पहुंचे लम्बे स्वतंत्रता आन्दोलन के समय में रूप-आकार लिया। साथ ही यह आन्दोलन राष्ट्र-निर्माण का आन्दोलन भी था। इस लम्बे और सघन सामाजिक-राजनैतिक मंथन से उभरा भविष्य का नक्शा और मूल्य भारत के संविधान में स्पष्ट तौर पर समाहित थे। इसीलिए ये तीनों दस्तावेज अपने मूल्य बहुत ही खुले और स्पष्ट तौर पर इन दो स्रोतों से हासिल करते हैं - स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास से और भारत के संविधान से।

भारत के संविधान की प्रस्तावना मूल्यों की एक बहुत ही संक्षिप्त लेकिन बढ़िया अभिव्यक्ति है। यह “भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प...” का प्रस्ताव है। तीनों दस्तावेजों में इन मूल्यों का जिक्र प्रायः विशेष सिफारिशों और नीति संबंधी कथनों के लिए आधार के रूप में किया गया है। इस संदर्भ में समानता और सामाजिक न्याय सबसे अधिक स्पष्ट तौर पर मूल्यों के रूप में सामने आते हैं (एन.सी.ई.आर.टी., 1988, पृष्ठ 3; एन.सी.ई.आर.टी., 2000, पृष्ठ 9; एन.सी.ई.आर.टी., 2005, पृष्ठ 7)। शिक्षा से अपेक्षा की जाती है कि वह समानता और न्याय के मूल्यों को दिल-ओ-दिमाग में बैठाएगी और इसके साथ-साथ समाज में समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए एक साधन का काम करेगी।

तीनों दस्तावेज शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय अखण्डता और मजबूत राष्ट्रीय पहचान के निर्माण पर बल देते हैं। इसके अलावा एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 नैतिक, सदाचारी, सार्वभौमिक, सामाजिक, आत्मिक और पर्यावरण संबंधी कई अन्य मूल्यों का भी जिक्र करते हैं। प्रतीत होता है कि एन.सी.एफ. 2005 में इस प्रकार के अतिरिक्त मूल्यों को समानता, न्याय और सबके कल्याण का ध्यान रखने वाले संवैधानिक मूल्यों से ही निकाला गया है।

दिलचस्प बात है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भारत में एक संवैधानिक मूल्य के तौर पर देखा जा सकता है क्योंकि इसका जिक्र एक भारतीय नागरिक के मूल कर्तव्यों में किया गया है और तीनों दस्तावेज संवैधानिक दायित्वों पर बल देते हैं। एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 विशेष तौर पर इसका जिक्र करते हैं। एन.सी.एफ. 2000 भारत की सांस्कृतिक विरासत और नैतिक विकास में धार्मिक विश्वासों की भूमिका पर अधिकतम बल देता है। इस दस्तावेज को ध्यान से पढ़ा जाए तो महसूस होता है कि इसमें संवैधानिक तथा तार्किक मूल्य क्षीण हुए हैं और इसका झुकाव धार्मिक रंग लिए हुए सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की ओर है। लेकिन सामान्य तौर पर देखें तो मूल, बुनियादी मूल्य लोकतंत्र, समानता, न्याय और बहुलता के मूल्य ही हैं। एन.सी.एफ. 2005 विशेष तौर से व्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वायत्तता पर भी बल देता है। इस प्रकार देखा जाए तो मूल्यों के संदर्भ में मोटे तौर पर ऊपर जिक्र में आए ढांचे की सामाजिक-राजनैतिक मान्यताओं का कथन तो किया ही गया है।

शिक्षा के उद्देश्य

जहां तक विचाराधीन तीन दस्तावेजों की बात है, हम शिक्षा के उद्देश्यों को सबसे बेहतर समझ पाएंगे यदि हम पहले राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को समझ लें, फिर शिक्षा के उद्देश्यों पर आएंगे। इन दस्तावेजों में चिन्ता का एक महत्वपूर्ण विषय ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का निर्माण है जो सुनिश्चित करे कि सब भारतीय बच्चे एक-सी शिक्षा हासिल कर पाएं। एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश थी जिसके ढांचे, मूल्यों की रूपरेखा, उद्देश्यों और सीखने की उपलब्धियों में राष्ट्र-व्यापी एकरूपता हो। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा को शिक्षा की ऐसी ही राष्ट्रीय व्यवस्था की रचना हेतु एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। एन.सी.एफ. 1988 स्पष्ट करता है कि “प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की परिकल्पना राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में की गई है” (पृष्ठ 12)। इसलिए एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 में शिक्षा के उद्देश्यों को राष्ट्र निर्माण के लिए शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। शिक्षा को “मानव संसाधन विकास के लिए एक ताकतवर औजार” के रूप में देखा गया है और आशा की जाती है कि यह “वांछित सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों और प्राथमिकताओं को हासिल करने में मददगार” होगी (एन.सी.एफ. 1988, पृष्ठ 3)।

शिक्षा के उद्देश्यों को इस रूप में समझा जा सकता है - शिक्षा के माध्यम से शिक्षार्थियों में वांछित योग्यताओं और विशेषताओं के विकास की कोशिश। इस प्रकार की योग्यताओं और विशेषताओं को ज्ञान, समझ, नैतिक मूल्यों, चारित्रिक गुणों और दक्षताओं के अर्थ में विस्तार दिया जा सकता है। यदि हम एन.सी.एफ. 1988 में शामिल शिक्षा के उद्देश्यों को समझने के लिए इस परिप्रेक्ष्य को प्रयोग में लाते हैं तो हम पाएंगे कि *करिकुलर कंसर्न्स* यानी ‘पाठ्यचर्या के सरोकार’ शीर्षक वाले खण्ड में काफी कुछ कहा गया है। इन सरोकारों की लम्बी सूची पर कुछ सोच-विचार से मालूम होता है कि शिक्षा के उद्देश्यों के तौर पर शिक्षार्थियों में विकसित किए जाने वाली योग्यताओं और विशेषताओं को इस प्रकार पुनः व्यवस्थित किया जा सकता है:

1. चरित्र निर्माण एवं मूल्यों का मन में बैठाना
 - i. सवैधानिक मूल्यों को दिल-ओ-दिमाग में बैठाना, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, धर्म निरपेक्षता, भाईचारा, मानव की गरिमा आदि।
 - ii. सांस्कृतिक मूल्यों, राष्ट्रीय विरासत की कद्र करते हुए सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पहचान का विकास।
 - iii. पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता तथा उसके बचाव के लिए प्रतिबद्धता का विकास और छोटे परिवार के मानदण्ड का समर्थन।
 - iv. ईमानदारी, सच्चाई, उचित और न्यायप्रिय कर्म आदि जैसे मूल्य।
2. सीखना कि सीखना कैसे होता है
3. रचनात्मकता को बढ़ावा देना
4. वैज्ञानिक मानसिकता और दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना (भारत के शैक्षिक सन्दर्भ करता है : “लोकतंत्र में नागरिकता की परिकल्पना में कई तरह के बौद्धिक, सामाजिक और नैतिक गुण शामिल होते हैं... एक लोकतांत्रिक नागरिक में सच को झूठ से और तथ्यों को प्रचार से अलग छानने की तथा धर्मान्धता और पूर्वाग्रह के खतरनाक आकर्षण को नकारने की समझ और बौद्धिक ईमानदारी होनी चाहिए” (एन.सी.ई.आर.टी., 2005, पृष्ठ 7)। माध्यमिक शिक्षा आयोग भी एक व्यक्ति में अंतर्निहित मूल्य को पहचानता और समझता है। “एक इंसान के तौर पर प्रत्येक व्यक्ति के महत्त्व और गरिमा में विश्वास लोकतंत्र का आधार है... ”¹ (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 1952, पृष्ठ 20)।

एन.सी.एफ. 2005 में दिए गए शिक्षा के उद्देश्य इसी रौशनी में अभिव्यक्त किए गए हैं। इनका भावानुवाद हम इस प्रकार कर सकते हैं :

- लोकतंत्र और समानता, न्याय, स्वतंत्रता, अन्य लोगों के कल्याण की चिन्ता, धर्म निरपेक्षता, मानव गरिमा और मानवाधिकारों के लिए तर्क और समझ पर आधारित प्रतिबद्धता।
- विचार और कर्म की स्वतंत्रता का विकास।
- अन्य लोगों के कल्याण और उनकी भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता का विकास।
- सीखना सीखना (लर्निंग टु लर्न)।
- काम करने की, आर्थिक प्रक्रियाओं और सामाजिक परिवर्तन में भाग लेने की सामर्थ्य और योग्यता का विकास।
- खूबसूरती और कला के विभिन्न रूपों को जान-समझ पाना।

विचारार्थ तीनों दस्तावेजों में सामाजिक-राजनैतिक दृष्टि को उचित स्थान दिया गया है। एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 में उद्देश्यों, लक्ष्यों और विषयवस्तु पर अस्पष्टता के बावजूद उद्देश्य और लक्ष्य देश के मूल्यों और लोकतांत्रिक दृष्टि की संगति में ही हैं। एन.सी.एफ. 2005 में मूल्यों और उद्देश्यों की अभिव्यक्ति में अधिक स्पष्टता और अनुरूपता है।

1. दिलचस्प बात है कि माध्यमिक शिक्षा आयोग रिपोर्ट (1952) और जॉन् व्हाइट के निबंध “नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के लिए नए उद्देश्य” (1998) में उल्लेखनीय समानताएं हैं - यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि यह निबंध न केवल एक अन्य देश में लिखा गया, बल्कि एक अलग युग में भी। बहुत कम ही संभावना है कि व्हाइट पहले दस्तावेज से परिचित हों। इसलिए कहा जा सकता है कि यह लोकतंत्र के बारे में एक-सी धारणाओं से प्राप्त निष्कर्षों का नतीजा है।

ज्ञान की धारणा

ज्ञान किसी भी पाठ्यचर्या का केन्द्रीय सरोकार है, फिर हम उसे चाहे किसी भी दृष्टि से क्यों न समझ रहे हों। एक बार सामान्य उद्देश्य और लक्ष्य तय हो जाते हैं तो उन्हें हासिल करने के तौर-तरीके और साधन तलाशने की बात आती है - ज्ञान एक उद्देश्य/लक्ष्य के रूप में भी है और अन्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधन के रूप में भी। उदाहरण के लिए, दक्षता की बात हो या मूल्यों को समझने की या फिर मूल्यों के लिए प्रतिबद्धता, सबके लिए उनसे प्रासंगिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। माना जाता है कि शिक्षा में बच्चे ज्ञान 'सीखेंगे' - आमतौर पर इसी पर अधिक बल दिया जाता है। इसलिए पाठ्यचर्या की विषयवस्तु के चुनाव, संघटन और व्यवस्था तथा उसकी क्रमबद्धता पर इस बात के महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ने की संभावनाएं हैं कि एक पाठ्यचर्या द्वारा ज्ञान की क्या धारणा प्रयोग में लाई जाती है, फिर इसे खुले तौर पर अभिव्यक्त किया गया हो या फिर परोक्ष तौर पर माना गया हो। इसका महत्वपूर्ण प्रभाव इस्तेमाल की गई शिक्षण पद्धति पर भी पड़ेगा। इसलिए पाठ्यचर्या में ज्ञान की धारणा पर्याप्त रूप से आ पाई है या नहीं, यह जांचने का एक तरीका है कि बहुत ध्यान से इस बात को परिभाषित और प्रदर्शित किया जाए कि विषयवस्तु के चयन, उसे व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध करने और शिक्षा पद्धति से संबद्ध निर्णयों तक पहुंचने में ज्ञान की धारणा का प्रयोग किस प्रकार किया गया है।

इस विश्लेषण में मैं एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 को एक साथ एक खण्ड में लूंगा और एन.सी.एफ. 2005 को दूसरे खण्ड में क्योंकि वह ज्ञान की समझ के संदर्भ में बाकी दोनों से काफी अलग है।

एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 में ज्ञान

एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 में शिक्षा की विषयवस्तु और प्रक्रिया का उद्देश्य "ज्ञान, दक्षताओं, दृष्टिकोणों और मूल्यों" का विकास करना है (एन.सी.ई.आर.टी., 1988, पृष्ठ 3 तथा एन.सी.ई.आर.टी., 2000, पृष्ठ 39)। इन सबको खुले और स्पष्ट तौर पर परिभाषित नहीं किया गया लेकिन शिक्षा से संबद्ध बातचीत में इनके अर्थ को मानकर चला गया है। इन दोनों दस्तावेजों में 'ज्ञान' की ओर इशारा लगभग हमेशा ही तथ्यात्मक ज्ञान (मैं जानता हूँ कि...) के रूप में किया गया है, जैसा कि ज्ञान, दक्षताओं, दृष्टिकोणों, मूल्यों, आदतों आदि के अलग जिक्र से संकेत मिलता है। लेकिन जहां तक इसकी सत्यता की बात है, मान लिया गया है कि यह तथ्यात्मक ज्ञान समस्याविहीन है, क्योंकि ज्ञान के किसी भी प्रकार के सत्यापन और तस्दीक का कोई जिक्र नहीं किया गया है। यदि यह तथ्यात्मक ज्ञान है तो इसमें अनिवार्यतः संसार के बारे में कुछ दावे शामिल होंगे और शायद उन दावों में विश्वास भी; लेकिन इस प्रकार के दावों के प्रमाण और उनके सत्य होने की अपेक्षा अंतर्निहित है। यह भी माना गया है कि ज्ञान एक ओर तो जानकारी और दूसरी ओर समझ से अलग है (एन.सी.ई.आर.टी., 1988, पृष्ठ 8; और एन.सी.ई.आर.टी., 2000, पृष्ठ 26)। लेकिन विश्वास या धारणा को ज्ञान का दर्जा मिल पाए, इसके लिए उसे कुछ आवश्यक शर्तों या मानदण्डों को पूरा करना होगा। ऐसा नहीं होगा तो जानकारी और ज्ञान के बीच अन्तर करना मुश्किल होगा। उदाहरण के लिए, प्रमाणीकरण का होना और सत्य - ये इस प्रकार की दो शर्तें हो सकती हैं जिनका पूरा होना आवश्यक है। दूसरी ओर लगता है कि समझ पहले से ही ज्ञान को मानकर चलती है और इसमें या तो अवधारणाओं और सिद्धांतों का अर्थ-निर्माण शामिल होता है या फिर तथ्यों, स्थितियों तथा अन्य इंसानों की भावनाओं और मतों की विवेचनात्मक सराहना। इस प्रकार ज्ञान एक ओर तो जानकारी और दूसरी ओर समझ के बीच कहीं खड़ा प्रतीत होता है। वह जानकारी से कुछ अधिक और समझ से कुछ कम है। दोनों दस्तावेज बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि ज्ञान और समझ का होना शिक्षा का उद्देश्य होने चाहिए, केवल जानकारी

का होना नहीं। अपने-आपमें यह बल देने योग्य शिक्षा का लक्ष्य हो सकता है लेकिन जानकारी और ज्ञान के बीच किसी स्पष्ट अन्तर के बिना हमें शायद वास्तविक व्यवहार में इस बारे में कुछ भी पता न लगे कि वह असल में क्या है। कहा जा सकता है कि यह स्थिति इन दस्तावेजों में ज्ञान की धारणा की अपर्याप्त अभिव्यक्ति की वजह से बनती है।

भारत की शिक्षा व्यवस्था पाठ्यचर्या के अत्यधिक बोझ का शिकार है। पाठ्यचर्या के बोझ को घटाए जाने के लिए अब तक सरकार द्वारा कम से कम दो अधिकृत कमेटियां बैठाई गई हैं - 1977 में ईश्वरभाई पटेल कमेटी और 1992 में यशपाल कमेटी। भारतीय शिक्षा की एक और गंभीर समस्या रटन्त शिक्षा की है। यह शोध करने लायक बात है कि क्या इन समस्याओं के निरन्तर गंभीर रूप धारण करने के पीछे ज्ञान की अपर्याप्त रूप में अभिव्यक्त धारणा भी एक कारक तो नहीं है? वह ज्ञान जिस की सिफारिश की जा रही है और जानकारी जिसे रटन्त शिक्षा के रूप में लिया जा रहा है, इन दोनों में किसी प्रकार का स्पष्ट अन्तर न किए जाने की वजह से कोई भी शिक्षक, की गई सिफारिशों को ठीक से नहीं समझ पाता और इसलिए उन्हें लागू भी नहीं कर पाता। प्रथम दृष्टि में तो यह बात सही लगती है।

ज्ञान हासिल करने के मामले में दोनों दस्तावेज (1988 और 2000 के एन.सी.एफ.) अनुभव, गतिविधियों और अन्य लोगों के साथ अन्तःक्रिया को बहुत महत्त्व देते हैं तथा तथ्यों और अवधारणाओं की प्रस्तुति के बारे में भी बात करते हैं। सिफारिश की गई है कि शिक्षक की भूमिका एक मददगार की हो (एन.सी.ई.आर.टी., 1988, पृष्ठ 8)। एन.सी.एफ. 2000 एक कदम आगे जाता है; मानकर चला गया है कि रचनावादी शिक्षक “सफल शिक्षण के लिए किन्हीं सख्त कार्य-नियमों का पालन नहीं करेगा” (एन.सी.ई.आर.टी., 2000, पृष्ठ 26)। ज्ञान के लिए किसी सार्वजनिक मानदण्ड की हर संभावना को नकारा गया है क्योंकि “ज्ञानार्जन एक रचनावादी या सृजनशील प्रक्रिया है और प्रत्येक शिक्षार्थी का ज्ञान व्यक्तिगत और अनोखा होता है” (एन.सी.ई.आर.टी., 2000, पृष्ठ 42)।

विभिन्न विषय-क्षेत्रों में ज्ञान की व्यवस्था और संघटन के मामले को बस सहूलियत की बात के रूप में रखा गया है। बिना किसी तार्किक आधार के कहा गया है कि “आदर्श रूप में सीखने के विभिन्न अनुभव एकीकृत रूप से संपूर्ण होने चाहिएं, उन्हें विभिन्न विषय-क्षेत्रों में सहूलियत के लिए वर्गीकृत करना होगा” (एन.सी.ई.आर.टी., 1988, पृष्ठ 19 तथा एन.सी.ई.आर.टी., 2000, पृष्ठ 49)। लेकिन विभिन्न विषय-क्षेत्रों के लक्ष्यों और ब्यौरों पर इस तर्कहीन कथन का कोई प्रभाव नहीं है। दावा किया गया है कि वैज्ञानिक मानसिकता के शिक्षण के लिए गणित सबसे शक्तिशाली साधन है (एन.सी.ई.आर.टी., 1988, पृष्ठ 23)। विज्ञान को अंधविश्वास का तोड़ करने वाला और सामाजिक विज्ञानों को मूल्यों के शिक्षण का विशेष तौर से प्रभावशाली साधन माना गया है। दोनों दस्तावेज विषयों की विभिन्न विशेषताओं को विषय-क्षेत्रों की प्रकृति और कार्यक्षेत्रों में अन्तर के दावे के रूप में देखते हैं और यह प्रवृत्ति बारंबार जाहिर होती है। अतः विभिन्न विशेषताएं होना ही विषय क्षेत्रों की प्रकृति और कार्यक्षेत्र में अन्तर का कारण माना जा रहा है। एक ओर यदि विषयों के विभाजन के लिए सहूलियत के अलावा कोई भी अन्य आधार नहीं दिया गया तो दूसरी ओर ये दावे भी मनमाने किस्म के ही कहे जा सकते हैं।

ज्ञान का यह नजरिया इस बात को समझने-स्वीकारने की इजाजत नहीं देता कि विभिन्न विषयों के लिए शिक्षा पद्धति और विषयवस्तु के चयन हेतु कुछ ज्ञानशास्त्रीय आवश्यकताएं होंगी। इस दृष्टिकोण के मुताबिक चलें तो दलील होगी कि परंपरागत मनमानी, स्वच्छन्द भिन्नताओं को बिना किसी तार्किक आधार के बनाए रखना संभव है। इसलिए ज्ञान का यह नजरिया ज्ञान को बच्चे की बोधात्मक प्रक्रियाओं

और सार्वजनिक तौर पर पहचाने जाने लायक सत्यापन के मापदण्डों से जोड़ने का मौका खो देता है। इसके चलते पूरा मैदान बिना सोचे-समझे विकासात्मक मनोविज्ञान लागू किए जाने के लिए खुला रह जाता है और हमें इस प्रकार की सिफारिशों की ओर ले जाता है कि 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों हेतु गणित का केवल ठोस और प्रयोगात्मक शिक्षण हो। प्राथमिक स्कूल के अन्त तक शिक्षार्थियों से आशा की जाती है कि वे ज्यामिति के प्रमेय (थ्योरम) मापन एवं 'प्रायोगिक तरीकों' से सिद्ध करें। एन.सी.एफ. 1988 तथा एन.सी.एफ. 2000 में विज्ञान अकेला अपवाद है जिसमें ज्ञान की प्रकृति और ज्ञान के सृजन के तरीकों के बारे में शिक्षण की बात को माना गया है। किसी भी अन्य विषय क्षेत्र में ज्ञान की प्रकृति के बारे में विशेष चिन्ता या उस पर विचार नहीं है; शायद इसलिए कि ऐसा करना उस विचार के विरुद्ध जाएगा जिसके तहत बाल-केन्द्रित ज्ञान को बिना किन्हीं खण्डों के, साबुत रूप में लिया जाता है।

“पाठ्यपुस्तकों में उपलब्ध अधिकृत ज्ञान को ज्यों का त्यों, हर्फ-ब-हर्फ याद करना” - भारत की सब कक्षाओं में यह ज्ञान की चालू, कार्यात्मक परिभाषा है। बुरी तरह से स्थापित हो चुकी ज्ञान की इस निरंकुश परिभाषा पर एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 द्वारा ज्ञान के बारे में किए गए अस्पष्ट और अंतर्विरोधी दावों का कोई असर नहीं पड़ा। ज्ञान के एक स्वतंत्र निर्माता के रूप में बच्चे की पहचान ज्ञान के निरंकुश दृष्टिकोण को चुनौती दे पाए, इसके लिए जरूरी है कि ज्ञान के लिए ज्ञानशास्त्रीय मानदण्डों की भूमिका पर बल दिया जाए। साथ ही बच्चे द्वारा ज्ञान से संबंधित दावों के आकलन के लिए उनके प्रभावी प्रयोग के अधिकार पर बल दिया जाए।

एन.सी.एफ. 2005 में ज्ञान

एन.सी.एफ. 2005 ज्ञान को एक अलग ही रौशनी में देखता है। यह दस्तावेज पाठ्यचर्या से संबंधित विभिन्न निर्णयों में ज्ञान की प्रकृति को ध्यान में रखे जाने की आवश्यकता को खुले तौर पर समझता है (एन.सी.ई.आर.टी., 2005, पृ. 4, पृ. 8, पृ. 10)। इस दस्तावेज में सीखना और सामान्य तौर पर ज्ञान की प्रकृति पर अध्याय 2 में विचार किया गया है। विषय विशेष से संबंधित मुद्दों पर विचार किया गया है, साथ ही विषय के ज्ञान और प्रत्येक विषय-क्षेत्र की शिक्षण पद्धति पर विस्तार से बात की गई है।

ज्ञान के विचार और प्रकृति पर उचित बल दिए जाने के बावजूद एन.सी.एफ. 2005 ज्ञान की एक अस्पष्ट-सी तस्वीर प्रस्तुत करता है, खास तौर से सीखने और ज्ञान पर विचार के संदर्भ में। यह कुछ हद तक इसलिए है कि दस्तावेज में ज्ञान के दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोण हैं और दोनों को ही आंशिक रूप से अभिव्यक्त किया गया है। एक दृष्टिकोण अनुभव और व्यक्तिगत स्तर पर अर्थ तक पहुंचने की प्रक्रिया पर अधिक बल देता है; इसके तहत सार्वजनिक प्रतिमानों एवं वर्गीकरण को भी संशय की निगाह से देखा जाता है। यहां सीखना-सिखाना ही सब कुछ है और ज्ञान को बहुत ही कमजोर ढंग से परिभाषित किया गया है। हम इसे 'ज्ञान का पहला नजरिया' कहेंगे क्योंकि यह दस्तावेज में भी पहले आता है। ज्ञान का दूसरा नजरिया ज्ञान को मुख्य तौर पर इस रूप में देखता है कि उसे सत्यापन के सार्वजनिक तौर पर बहस योग्य प्रतिमानों की जरूरत पड़ती है और वह वर्गीकरण की जरूरत को भी स्वीकारता है। यह नजरिया ज्ञान को अनुभव से पैदा हुआ, उसमें जड़बद्ध तो मानता है लेकिन भाषा, अभिव्यक्ति और अवधारणात्मक संघटन और व्यवस्था को बहुत महत्वपूर्ण मानता है। इस नजरिए के अंतर्गत ज्ञान ही सब कुछ है और सीखना-सिखाना ज्ञान को हासिल करने का एक साधन है। इस नजरिए को हम 'ज्ञान का दूसरा नजरिया' कहेंगे - क्योंकि दस्तावेज में यह इसी रूप में आता है।

पहला नजरिया मूल रूप से रचनावादी शिक्षा पद्धति से उत्पन्न होता है। सौभाग्यवश, भारतीय रचनावाद संभलकर चलने वाला नजरिया है और इसलिए इस आवश्यकता को स्वीकार कर सकता है कि अन्ततः ज्ञान के लिए प्रामाणिकता की कुछ कार्यविधियां या मानदण्ड होने चाहिए। सीखने के चरण में, विशेष तौर पर बच्चों के लिए, प्रामाणिकता खास तौर पर शिक्षार्थी की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में ही बसी हुई है। बच्चों को स्वयं अपने ज्ञान के निर्माता के रूप में देखा गया है (एन.सी.ई.आर.टी., 2005, पृ. 11); और सीखने को 'ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया' के तौर पर देखा गया है। 'शिक्षार्थी उनके लिए उपलब्ध गतिविधियों/सामग्री (अनुभव) के आधार पर नए विचारों को पूर्व प्रचलित विचारों के साथ जोड़कर सक्रिय तौर पर अपने ज्ञान की रचना स्वयं करते हैं' (एन.सी.ई.आर.टी., 2005, पृ.15)। क्या रचा जाता है? रचा जाता है 'दी गई गतिविधियों (अनुभव) के माध्यम से बाहरी यथार्थ (यातायात व्यवस्था) की मानसिक छवियों को। जैसे-जैसे शिक्षार्थी सीखने में आगे बढ़ते हैं, विचारों की रचना एवं पुनर्रचना इस प्रक्रिया की आवश्यक विशेषता बन जाते हैं' (वही)। 'रचना से हमें संकेत मिलता है कि प्रत्येक शिक्षार्थी सीखते हुए व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर अर्थ की रचना करता/करती है। अर्थ निर्माण ही सीखना है' (वही, पृ. 16)। सीखने के कार्य ऐसे होने चाहिए कि पाठ्यपुस्तक से बाहर भी ज्ञान की तलाश हो और यह 'विचार और दर्शन' संप्रेषित हो कि सीखने और ज्ञान को खोजना, सत्यापित करना और इसके फलस्वरूप निर्मित करना है। न तो पाठ्यपुस्तक और न ही शिक्षक एकमात्र ज्ञानी और विशेषज्ञ है' (वही, पृ. 19)। ज्ञान निर्माण का यह नजरिया हर चीज को अपने दायरे में लेता है - 'हमें बच्चे को हर वक्त 'ज्ञान निर्माण' में लगा हुआ मानने की जरूरत है। यह गणित तथा विज्ञान, भाषा तथा सामाजिक विज्ञान जैसे 'संज्ञानात्मक विषयों' के बारे में ही सत्य नहीं है, बल्कि मूल्यों, दक्षताओं और मनोवृत्तियों के बारे में भी उतना ही सच है' (वही, पृ. 20)। यह ज्ञान, सीखने-सिखाने और हासिल किए गए ज्ञान के सत्यापन की अवधारणाओं का एक संक्षिप्त और मोटा खाका है।

जहां तक मनोवैज्ञानी रचनावाद का संबंध है, इस नजरिए को शायद स्वीकारा जा सकता है। प्रत्येक बच्ची- और वयस्क भी - अपना ही अर्थ बनाती है; उसके लिए यह काम कोई अन्य कभी भी नहीं कर सकता। इस प्रकार, इस अर्थ में शिक्षार्थी की सक्रिय भागेदारी और महत्त्व सीखने-सिखाने के केन्द्र में है। हां, इस अर्थ-निर्माण में अन्य द्वारा मदद की जा सकती है; चीजों, विचारों और संबंधों की ओर इशारा किया जा सकता है और भाषा के माध्यम से सोच-प्रक्रियाओं को प्रभावित किया जा सकता है। और इस प्रकार बच्चों पर 'स्वयं अपने ज्ञान के रचनाकार' होने के बल को 'स्वयं अपने ज्ञान के अकेले रचनाकार' के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन अधिक कठिन समस्या सत्यापन की है। ज्ञान के इस पहले नजरिए के मुताबिक पाठ्यपुस्तक और शिक्षक एकमात्र विशेषज्ञ या ज्ञानी नहीं हैं। यहां तक तो ठीक है और इसे ज्ञान के निरंकुश नजरिए को चुनौती देने की अच्छी शुरुआत कहा जा सकता है। लेकिन इस दावे से एक और सवाल खड़ा होता है : हम सत्यापित ज्ञान को असत्यापित ज्ञान से कैसे अलग करें? क्या निर्मित हुए सब विश्वास और धारणाएं बराबर मूल्य के हैं? क्या वे सब बराबर के 'सत्य' हैं? और इस पूरे सिलसिले में सत्य का अर्थ क्या होगा? क्या हम जायज तौर पर मान के चल सकते हैं कि क्योंकि बच्चे का ज्ञान 'सामाजिक तौर पर रचित' है, इसलिए सत्यापन के सवालों का जवाब स्वयं मिल जाएगा? इन सवालों के जवाब ज्ञान के पहले दृष्टिकोण में नहीं मिलते और इसलिए पाठ्यचर्या के विकास में उसके प्रयोग के बारे में संशय पैदा होते हैं। मूल रूप से यह शिक्षण पद्धति का एक जटिल विवरण है और ज्ञान के लिए सार्वजनिक मानदण्डों की जरूरत के प्रति लापरवाह है। यहां लक्ष्य है सीखना। इसमें शक है कि क्या इस प्रकार से परिभाषित सीखने का भी कुछ अधिक शैक्षिक लाभ होगा। क्योंकि 'क' सीख लेने का अर्थ है कि हम 'क' में किन्हीं मापदण्डों तक पहुंच गए हैं (पीटर्स और हर्स्ट, 1970, पृ. 75)। ऐसे मापदण्ड के अभाव में हम शायद सीखने को व्यवहार, ज्ञान या प्रवृत्ति में परिवर्तन

के रूप में परिभाषित तो कर सकेंगे लेकिन शैक्षिक उद्देश्यों के लिए उसकी प्रासंगिकता को स्थापित नहीं किया जा सकता।

अब हम एन.सी.एफ. 2005 में ज्ञान के दूसरे नजरिए की बात करते हैं। दस्तावेज में यह नजरिया अधिक स्पष्टता के साथ निकल कर आया है। इस नजरिए के मुताबिक 'ज्ञान की कल्पना संगठित अनुभव के रूप में की जा सकती है, जो भाषा, विचार के ताने-बाने (या अवधारणाओं की संरचना) के माध्यम से अर्थबोध पैदा करता है और जिसकी बदौलत हमें अपने संसार को समझने में मदद मिलती है। इसकी कल्पना गतिविधियों के ताने-बाने के तौर पर या विचार के साथ-साथ शारीरिक कुशलता, सांसारिक कार्यों में सहभागिता और चीजों की रचना के रूप में भी की जा सकती है' (एन.सी.ई.आर. टी., 2005, पृ. 23)। इस परिभाषा के साथ एक समस्या यह है कि यह ज्ञान की उत्पत्ति और प्रयोग के साथ-साथ ज्ञान की अवधारणा को भी अपने दायरे में लेती है और इस प्रकार महत्त्वकांक्षी होने की वजह से कुछ दुर्बोध और गूढ़ हो जाती है। सीधी सरल भाषा में कहें तो ज्ञान को 'अवधारणाओं की संरचना' और 'गतिविधि के तानों-बानों' (जिनमें विचार भी शामिल हैं) के तौर पर परिभाषित किया गया है। पहला हिस्सा तथ्यात्मक ज्ञान की ओर संकेत करता है जबकि दूसरा, दक्षताओं या कार्यविधि से संबद्ध ज्ञान की ओर। अवधारणाओं और उनके ढांचों तथा दक्षताओं का आधार अनुभव को बताया गया है और इसका प्रयोग संसार को समझने या उस पर कार्य करने के लिए है। इनमें से अधिकतर बातों के लिए तर्क दिए जा सकते हैं और यहां तक की बात में ज्ञान के इस चित्रण का ज्ञान के पहले नजरिए के साथ तनाव नहीं है।

इससे आगे चलें तो दावा यह भी किया गया है कि इंसान ने ज्ञान के ढांचे बनाए हैं और ज्ञान, विचार, भावना और क्रिया की रचना के तौर-तरीके भी। सभी बच्चों से आशा की जाती है कि वे ज्ञान के इस संग्रह के प्रासंगिक हिस्सों को पुनर्रचित करेंगे। इसमें 'स्वीकृत निष्कर्षों' के रूप में ज्ञान (तथ्यात्मक ज्ञान) जो हमेशा पुनर्निरीक्षण के लिए खुला रहेगा और नए ज्ञान की रचना के सिद्धांत और तौर-तरीके, दोनों शामिल रहेंगे। ज्ञान का दर्जा पाने के लिए प्रस्तावित दावेदारों का निरीक्षण भी होगा।

इसके अलावा, ज्ञान को आपस में संबद्ध दो हिस्सों के तौर पर भी देखा गया है : व्यवहार में ज्ञान और समझ के स्वरूप। बड़ई की कारीगरी जैसे व्यावसायिक शिल्पों को, जिन्हें आम तौर पर बस व्यवहार में आने वाली दक्षताओं के रूप में ही देखा जाता है और जिनमें बहुत कम सोच-विचार और अवधारणात्मक आधार शामिल माना जाता है, को काफी हद तक विस्तार देकर 'व्यवहार में ज्ञान' का दर्जा दिया गया है। यह तथ्यात्मक ज्ञान के साथ शिल्पों और व्यवसायों के विभिन्न अंतःसंबंधों के एक मौन रिश्ते और समझ को स्वीकार करता है, और इस प्रकार बड़ईगिरी जैसे शिल्पों और व्यवसायों, कबड्डी जैसे खेलों आदि की एक समृद्ध अवधारणा प्रस्तुत करता है। फिर तथ्यात्मक ज्ञान को समझ के स्वरूपों के तौर पर वर्गीकृत किया गया है। यह विभिन्न स्वरूपों में शामिल अवधारणाओं की प्रकृति और सत्यापन के मानदण्डों के आधार पर किया गया है, और ऐसा करने में मोटे तौर पर हर्स्ट और डियरडेन द्वारा किए गए वर्गीकरण को आधार बनाया गया है। यह योजना संपूर्ण रूप से ठीक न होते हुए भी पाठ्यचर्या की विषयवस्तु के चयन और उसकी व्यवस्था करने में प्रयोग की जा सकती है। हम यहां कार्यविधियों, सत्यापन और इनके लिए सार्वजनिक तौर पर स्वीकृत मानदण्डों की बात संक्षिप्त में करेंगे।

ज्ञान के दूसरे नजरिए की अभिव्यक्ति के तुरन्त बाद दस्तावेज ज्ञान के पहले नजरिए पर फिर से बल देता है और दूसरे नजरिए को विषय-व्यवस्था, विषयवस्तु के चयन और शिक्षा पद्धति से संबद्ध निहितार्थ के लिए इस्तेमाल करने में काफी हिचकिचाहट दिखाता है। ज्ञान के चयन के लिए प्रासंगिकता, रुचि और

अर्थपूर्ण होने की बात का जिज्ञासु महत्वपूर्ण मापदण्डों के रूप में किया गया है (एन.सी.ई.आर.टी., 2005, पृ.30)। विषय-आधारित पाठ्यचर्या से संबंधित लगभग आधा दर्जन समस्याओं पर विस्तृत चर्चा की गई है (वही, पृ.31)। इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि ज्ञान का दूसरा नजरिया इनमें से कई समस्याओं के प्रभावी हल प्रदान कर सकता है, जैसे विषयों का एक-दूसरे से बिल्कुल कटा हुआ, असंबद्ध, अलग-थलग होना और ज्ञान को एक तैयार उत्पाद के रूप में परोसा जाना। इन सब वास्तविक समस्याओं के हल की कोशिश ज्ञानशास्त्र के नजरिए से और व्यक्तिपरक मनोवैज्ञानिक नजरिए से (जिस पर अधिक बल दिया जाता है) की जा सकती है। संभावित ज्ञानशास्त्रीय हलों को ध्यान में लिए जाने की पूर्ण तौर पर उपेक्षा और केवल मनोवैज्ञानी प्रक्रियाओं पर बल दिए जाने से यह आभास होता है कि ज्ञानशास्त्रीय मापदण्ड हल निकालने की ओर बढ़ता कदम न होकर एक समस्या है। हां, समझ के स्वरूपों को उच्च प्राथमिक स्तर पर पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र की व्यवस्था के लिए प्रयोग में लाने की संभावना को स्वीकारा गया है।

दस्तावेज में ये दोनों नजरिए बहुत ही बढ़िया तरीके से सहअस्तित्व में रहते हुए से लगते हैं न कि एक-दूसरे को निखारते-संवारते हुए और एक सुस्पष्ट, सुसंगत ज्ञानशास्त्र के तौर पर एकीकृत। दुर्भाग्य से दोनों नजरिए आंशिक रूप से ही अभिव्यक्त हुए हैं। ज्ञान का पहला नजरिया ज्ञान के सत्यापन के लिए मानदण्डों पर विस्तार से बात नहीं करता और इससे आभास मिलता है कि शिक्षार्थी द्वारा रचित सब मत और विचार स्वयं, खुद-ब-खुद ज्ञान का दर्जा हासिल कर लेते हैं। ज्ञान का दूसरा नजरिया सीखने-सिखाने और स्कूली विषयों की व्यवस्था के साथ अपने संबंध को अभिव्यक्त नहीं करता। इसलिए गुंजाइश रहती है कि वह एक-दूसरे से असंबद्ध और कटे हुए विषय-क्षेत्रों के लिए दलील देता हुआ तथा बच्चों की रुचियों, वर्तमान समझ और उनसे सक्रिय संबंध को अनदेखा करता हुआ लगे। इस अधूरी अभिव्यक्ति के चलते ज्ञान और सूचना के बीच के अन्तर, ज्ञान और मूल्यों के बीच के संबंध और दक्षताओं के विकास में ज्ञान की भूमिका जैसे सवाल भी छूट जाते हैं।

लेकिन सीखना और ज्ञान पर अध्याय में ज्ञान के पहले और दूसरे नजरिए के बीच के इस तनाव की बात में कुछ हद तक सुधार हो जाता है, विशेष तौर से विषय-क्षेत्रों के विवरणों में। विषयों पर सब चर्चाएं लक्ष्यों को अभिव्यक्त करती हैं, ज्ञान की प्रकृति और सत्यापन के मापदण्डों की ओर ध्यान देती हैं। विशेष तौर से विज्ञान पर चर्चा में विज्ञान की एक अच्छी पाठ्यचर्या के लिए सत्यापन का एक छःसूत्रीय मापदण्ड शामिल है (एन.सी.ई.आर.टी., 2005, पृ. 46)। ये मापदण्ड बच्चे की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं, ज्ञानशास्त्रीय और ऐतिहासिक मांगों और पर्यावरण तथा नैतिकता संबंधी बातों को ध्यान में रखते हैं। लेकिन यह ज्ञान के पहले नजरिए के रचनावाद के साथ पूर्ण रूप से सामंजस्य में नहीं है। हां, जहां तक ज्ञानशास्त्र की बात है, दस्तावेज में काफी अस्पष्टता के बावजूद, एन.सी.एफ. 1988 और एन.सी.एफ. 2000 के मुकाबले एन.सी.एफ. 2005 बहुत बेहतर है। ऐसा इसलिए कि यह न केवल ज्ञानशास्त्रीय सरोकार की आवश्यकता को समझता है बल्कि उद्देश्यों और लक्ष्यों को विषयवस्तु और शिक्षा पद्धति की प्रक्रियाओं के साथ जोड़ने के लिए एक ज्ञानशास्त्रीय ढांचा मुहैया करवाने की कोशिश करता है, फिर चाहे उसमें कमजोरियां और खामियां ही क्यों न हों।

निष्कर्ष

भारत की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखाओं ने शिक्षा के मूल्यों और उद्देश्यों के बारे में शुरुआती अस्पष्टता को 1988 और 2005 के बीच काफी स्पष्ट किया है। मूल्यों और उद्देश्यों की अभिव्यक्ति अधिक सुसंगत और देश की लोकतांत्रिक भावना के सामंजस्य में हो गई है। हम कह सकते हैं कि सामाजिक-राजनैतिक

मान्यताएं और धारणाएं अब पहले से बेहतर अभिव्यक्त हैं। इसी प्रकार शिक्षा की पद्धति और मनोविज्ञान में भी एक बदलाव आया है जो शिक्षा पद्धति के क्षेत्र में हो रही वर्तमान घटनाओं को ध्यान में रख रहा है - हालांकि इसमें मान्यताओं के स्तर पर उतनी स्पष्टता नहीं है जितनी कि सामाजिक-राजनैतिक क्षेत्र में। बच्चों के संदर्भ पर, जिस पर हमने यहां विचार नहीं किया है, शुरू से ही बल दिया गया है और शिक्षा पद्धति की प्रक्रिया और पाठ्यचर्या की विषयवस्तु को संदर्भ से जोड़ने की जरूरत स्पष्ट तौर पर अभिव्यक्त की गई है।

एन.सी.एफ. 2005 में ज्ञानशास्त्र से संबद्ध मुद्दों पर विचार की आवश्यकता के बारे में जागरूकता स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। पहले किसी भी प्रकार के ज्ञानशास्त्र की आवश्यकता ही महसूस नहीं की जाती थी, लेकिन अब इस बात में रुचि ली जा रही है और पहचाना जा रहा है कि किस प्रकार यह बेहतर पाठ्यचर्या के विकास में योगदान दे सकता है। लेकिन स्वीकृत ज्ञानशास्त्र की कोई स्पष्ट तस्वीर उभर कर नहीं आती। ज्ञान पर आधे-अधूरे विचारों की अभिव्यक्ति है और वे एक-दूसरे के साथ तनाव और खिंचाव में दिखाई देते हैं, हालांकि तार्किकता से बात करें तो ये तनाव शायद सुलझाए जा सकते हैं। मगर यह एक बड़ा मुद्दा है जिसके लिए और अधिक विश्लेषण की जरूरत है। इस प्रकार के विश्लेषण की संभावना मौजूद है क्योंकि रचनावादी ज्ञानशास्त्र, जिसकी ओर शिक्षाशास्त्र संकेत करता है और ज्ञान का पहला नजरिया अतिवादी किस्म के नहीं हैं। बहुत से ऐसे सवाल हैं जिन पर अभी विचार नहीं हुआ है और जिनकी ओर पाठ्यचर्या की बेहतर योजना के लिए ध्यान देने की जरूरत है। पाठ्यचर्या संबंधी ज्ञानशास्त्र पर एक स्पष्ट और सुविचारित रवैया शिक्षार्थियों की उपलब्धियों पर हुए अध्ययनों में बेहतरी लाने और उनके निष्कर्षों को प्रभावित करने की संभावना रखता है। लम्बे दौर में यह शिक्षार्थियों की उपलब्धियों में बेहतरी लाने में भी अपना योगदान दे सकता है।

भारत की कक्षाओं में बहुत गहरे से स्थापित हो चुकी रटन्त आधारित शिक्षा पद्धति और लगातार पाठ्यचर्या के बढ़ रहे बोझ को एक अधिक स्पष्ट, मजबूत और सुसंगत ज्ञानशास्त्रीय रवैया अख्तियार किए बिना चुनौती दे पाने की संभावना दिखाई नहीं देती। दावा यह नहीं है कि एक अधिक बेहतर अभिव्यक्ति वाला और मजबूत ज्ञानशास्त्रीय नजरिया स्वयं इन समस्याओं को हल कर सकता है; बल्कि एक कमजोर दावा किया जा रहा है - कि सफलता चाहते हैं तो शैक्षिक सुधारों के शस्त्रागार में यह एक आवश्यक शस्त्र है। ♦

भाषान्तर : रमणीक मोहन